International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(1): 08-09

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(1): 08-09
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 03-11-2018
Accepted: 06-12-2018

डॉ. तीर्थानन्द मिश्र
एसोसियेट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय,
उदयपुर, राजस्थान, भारत

Correspondence
डॉ. तीर्थानन्द मिश्र
एसोसियेट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय,
उदयपुर, राजस्थान, भारत

संस्कृत रूपकों में शाप

डॉ. तीर्थानन्द मिश्र

प्रस्तावना

स्वयं में अमूर्त होते हुए भी जो मूर्त होता है, उसे शाप कहा जा सकता है। समस्त विश्व इसके प्रभाव से संवलित है। मानव जीवन को सन्मार्ग के प्रति प्रवृत्त कराने वाला यह एक अंकुश है। शाप वर्तमान जीवन को संयमित करने के साथ– साथ भावी जीवन को भी आलोकित करता है। इसका अस्तित्व लौकिक तथा अलौकिक जगत् में भी है।

शाप का प्रत्यक्ष रूप नाटकीय गतिविधियों के परिप्रेक्ष्य में दृष्टिगोचर होता है। नाटकीय वस्तु का चयन रामायण तथा महाभारत जैसे आर्ष ग्रन्थों से किया जाता है। ऋषि–मुनियों के द्वारा रचित ग्रन्थ को ही आर्ष ग्रन्थ कहा जाता है जहाँ ऋषि से तात्पर्य 'सत्यवचस्' वेदज्ञाता, ब्रह्मज्ञानी तथा तपोमूर्ति इत्यादि से है। शाप, वरदान आदि सिद्धिदात्री क्रियाएँ इन्हीं ऋषि–महर्षियों की तपस्या की प्रतिक्रिया के रूप में जनसाधारण के समक्ष अवतरित हुई। रूपकों में 'शाप' सदृश तथ्य के प्रयोग द्वारा जो एक विशेष प्रकार की नूतनता लाने का प्रयास होता है, उसके मूल में मन्त्रद्रष्टा ऋषि की ही सत्ता होती है।

संस्कत रूपकों में 'शाप' का प्रयोग अनेकशः हुआ है। पौराणिक ग्रन्थ जिन्हें शाप का आकर माना जाता है अपनी श्रव्यता के कारण जन साधारण के सम्मुख इसका अद्भुद् रूप प्रकट करने में समर्थ नहीं हो सका। अतः इस कार्य को पूरा करने का श्रेय रूपकों को जाता है, क्योंकि रूपक दृश्य प्रधान काव्य होता है। नाटकीय भूमिका में सर्वप्रथम अश्वघोष का नाम आता है। परन्तु इनकी दृश्यकाव्य सम्बन्धित रचना की अनुपलब्धता के कारण इनके ग्रन्थों में शाप का अन्वेषण नहीं किया जा सकता। भासरचित तेरह रूपकों में से प्रतिमा, अभिषेक, अविमारक और बालचरित शाप अर्थात् अतिमानवीय तत्त्व की दृष्टि से विशेष स्पृहणीय है।

भासरचित स्वप्नवासवदत्तम् तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् में सर्वथा सामाजिक चित्रण होने के कारण अतिमानवीय तत्त्वों का अभाव है। किन्तु वाल्मीकीय रामायण पर आधारित भास के अधिकांश नाटकों में अति मानवीय तत्त्व का प्रमुखता से प्रयोग हुआ है, जिसका उद्घाटन किया जा रहा है।

भास के प्रतिमा नाटक एवं अभिषेक नाटक रामायण कथा पर ही आधारित है। प्रतिमा नाटक में महाराज दशरथ के शाप की घटना प्राप्त होती है। महाराज दशरथ चक्रवर्ती सम्राट थे तथा इन्हें इन्द्र का स्नेह प्राप्त था। एक बार शिकार करते समय अन्धमुनि के पुत्र श्रवण कुमार का हिरण समझकर इनके द्वारा वध कर दिया गया। असहाय अन्धुमुनि पुत्र की इस दशा को सुनकर करूण क्रन्दन करने लगे और अन्ततः उनके मुख से सहसा यह वाणी निःसृत हुई–

तेनोक्तं रूदितस्यान्ते मुनिना सत्यभाषिणा।
यथाहं भोस्त्वमप्येवं पुत्रशोकाद् विपत्स्यते।।

अर्थात् मेरी तरह तुम भी पुत्र–शोक में तड़प–तड़प कर प्राण त्याग करोगे। प्रतिमा नाटक में यह चित्रण अस्फुट होते हुए भी इसी शाप के इर्द–गिर्द सारी घटनाएँ पल्लवित होती हैं। अर्थात् दशरथ की मृत्यु शाप के ही परिणामस्वरूप हुई तथा उसी घटना के कारण राम को वन जाना पड़ा। इस शाप के कारण ही वस्तु रचना में गतिशीलता के साथ–साथ एक अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होता है जो दर्शक की मनःस्थिति में आश्चर्य की सृष्टि करता है। राम भी शाप के कारण ही वन जाते हैं तथा पत्नी से वियुक्त होते हैं और अन्ततः रावण का वध भी शाप के कारण ही होता है। ये घटनाएँ राम से सम्बन्धित समस्त नाटकों में हूबहू उद्धृत हुई है।

भास ने 'बालचरित' में शाप का मूर्तिकरण कर सशरीर प्रवेश कराया है। मधूक ऋषि द्वारा प्रदत्त वज्रबाहु नामक शाप कंस को धर्माचरण से च्युत करने हेतु अपने परिवार अलक्ष्मि, कालरात्रि, महानिद्रा और पिङ्गलादि के साथ राजभवन में प्रवेश करता है–

शाप– किं न जानीषे माम्। अहं खलु मधूकस्य ऋषेः शापो वज्रबाहुर्नाम।

श्मशानमध्यादहमागतोऽस्मि
चण्डालवेषेण विरूपचण्डम्।
कपालमालातिविचित्रवेषः
कंसस्य राज्ञो हृदयं प्रवेष्टुम्।। बालचरित 2/5

कंस की राजलक्ष्मी कंस को छोड़कर विष्णु के पास चली जाती है, क्योंकि विधि के प्रतिकूल होने से सभी प्रतिकूल हो जाते हैं। इस प्रकार शाप शनैः शनैः कंस को राज्यभ्रष्ट करने के कुचक्र में सफल होता है और कंस के वध में यह भी एक कारण बन जाता है।

इस प्रकार शाप के स्वरूप एवं प्रभाव का प्रत्यक्षीकरण रंगम०जीय व्यवस्था के अनुसार सारे दर्शकों को होता है। इसे भास की अपूर्व कल्पना का प्रतिफल कहा जा सकता है।

'अविमारक' में ऋषि चण्डभार्गव के शाप की घटना प्राप्त होती है। किसी समय चण्डभार्गव मुनि सौवीर राजा के राज्य में पहुँचते हैं। वहाँ उनके शिष्य को व्याघ्र ने सहसा कुछ चोट पहुँचा दी। इसे देखकर चण्डभार्गव अत्यधिक क्रोधित होते हुए उग्ररूप धारण कर लेते हैं। राजा ने ऋषि की उग्रता का परवाह किये बिना ही सहसा बोल दिया कि महात्मा को सहनशील होना चाहिए। आप में सहनशीलता नहीं है, अतः आप चाण्डाल हैं। परिणामतः चण्डभार्गव के उग्रतेज ने राजा को चाण्डाल बनने का शाप दे दिया –

यस्माद् ब्रह्मर्षि मुख्योऽहंयश्वपाक इति भाषितः।
तस्मात् सपुत्रदारस्त्वं श्वपाकत्वमवाप्स्यसि ।। अविमारक 6/6

राजा सौवीर ऋषि की वाणी को सत्य मानकर उनसे अनुनय विनय करने लगे। तब चण्डभार्गव ने शान्तभाव से कहा कि जो मुख से निकल गया वह तो अन्यथा नहीं हो सकता, परन्तु एक वर्ष तक ही तुम्हें इस योनि में रहना पड़ेगा।

इस प्रकार ''सौवीर'' को अपने ही क्रोध के कारण एक वर्ष तक चाण्डालयोनि में रहते हुए निन्द्य जीवन बिताना पड़ा और साथ ही शापपर्यन्त अविमारक भी पिता से वियुक्त रहकर अनेक यातनाओं को झेलता रहा। शाप की निवृत्ति होने पर ही अविमारक पिता से मिल पाया साथ ही शाप के कारण ही सारी घटनाएँ एक–दूसरे से टकराती हुई दुर्धर प्रयास के फलःस्वरूप अभीष्ट सिद्धि की ओर उन्मुख होती है। भास ने इसी प्रकार अधिकांश नाटकों में शाप जैसे तथ्यों के आधार पर ही नाटकीय वस्तु को घात–प्रतिघात एवं अन्तर्द्वन्द्व से अनुप्राणित किया है, जो दर्शक के अन्तःकरण को झंझावात की भाँति झकझोर कर एक–दूसरे किनारे खड़ा कर देता है। दर्शक या पाठक जहाँ एक ओर स्वाभाविक गति से ऋषि पर आक्रोश व्यक्त करता है वहीं इस शाप के मूल में विद्यमान अविनय जैसे तथ्य को भी स्वीकार करता है। परिणाम में जहाँ एक ओर दोष के प्रति करूणा है, दया है, वहीं दूसरे क्षण उसे दोषी समझता है तथा यह भी स्वीकार करता है कि शाप जैसे दण्डविधान के द्वारा इसका शमन आवश्यक है।

इसी प्रकार कालिदास ने भी अभिज्ञान शाकुन्तल में शाप की अवतारणा कर नायक की धीरोदात्तता की सर्वाशतः रक्षा की अन्यथा कालिदास का यह नाटक विश्वरङ्गम०च पर स्थान नहीं बना पाता। कालिदास रचित खण्डकाव्य मेघदूतम् एवं विक्रमोर्वशीयम्' त्रोटक में भी शाप की घटना का समावेश हुआ है। शाकुन्तलम् की घटना इस प्रकार है। शाकुन्तला पिता कण्व की अनुपस्थिति में यौवनजन्य सहज चा०चल्य के कारण अतिथिरूप में प्रविष्ट पौरव नरेश दुष्यन्त से गान्धर्व विवाह कर लेती है। दुष्यन्त जाते समय शकुन्तला की सखियों द्वारा आशङ्का व्यक्त करने पर अभिज्ञानार्थ 'मुद्रिका' प्रदान कर हस्तिनापुर लौट जाता है। इधर शकुन्तला उसके चले जाने पर अपनी कुटिया में चिन्तामग्न है। उधर महर्षि दुःर्वासा सहसा आश्रम में आगमन को विज्ञापित करते हैं। शकुन्तला पत्यासक्त होने के कारण उनकी अवहेलना कर देती है। अपनी अवहेलना से विचलित दुर्वासा शकुन्तला को शाप दे देते हैं –

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसातपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव ।।अभि. 4/2

अर्थात अन्यासक्त जिस प्रकार तूने मुझ अतिथि की परवाह नहीं की और मेरा अनादर किया, अतः वही व्यक्ति तुम्हारे द्वारा प्रबोधित किये जाने पर भी तुम्हें नहीं पहचानेगा।

महाभारत की घटना पर आधारित 'शाकुन्तलम्' में शाप की योजना सर्वथा महाकवि कालिदास की सूझ–बूझ पर आधारित है। कालिदास ने शाप की ही कसौटी पर शकुन्तला एवं दुष्यन्त दोनों को इतना कसा कि अन्ततः उन्हें तप्त सुवर्ण की भाँति निष्कलङ्क बना दिया। शाप की योजना कर कालिदास ने अपनी रचनाओं में जितना निखार लाने में सफलता प्राप्त की उतना निखार भास की रचनाओं में नहीं दीख पड़ता।

शकुन्तला ने पिता कण्व की स्वीकृति लिए बिना ही मधुलोलुप दुष्यन्त को सौन्दर्य– सौरभ का पान कराया। सोमतीर्थ से लौटकर त्रैकालज्ञ कण्व ने यह जानकर कि शकुन्तला आपन्नसत्वा है, उसे पतिगृह भेज दिया। परन्तु दुष्यन्त ने भीरूता का परिचय देकर उसका तिरस्कार करते हुए उसे स्वच्छन्द छोड़ दिया। शकुन्तला को दीर्घकाल तक विरहाग्नि में तपना पड़ा। परन्तु कालिदास ने इस नग्न सत्य को शाप के आवरण से आवृत्त कर तथा शकुन्तला एवं दुष्यन्त का मिलन कराकर आदर्शभूमि पर प्रतिष्ठापित किया। महाकवि कालिदास की यह मौलिक उद्भावना है। महाभारत में दुर्वासा के शाप का अस्तित्व ही नहीं है, परन्तु कालिदास का यह परिवर्तन आख्यानवस्तु को अधिक मनोवैज्ञानिक तथा न्यायिक धरातल पर नायक के चरित्र को उत्कर्षशाली बनाता है।

कालिदास की ही भाँति भास के भी नाटक शाप जैसे तथ्य के द्वारा विशृंखलित समाज को आदर्श रूप प्रदान करते हैं। दर्शक एक सामाजिक प्राणी होता है, उसे सामाजिक नियमों की मर्यादा में जीवन–यापन करना पड़ता है। अतः कवि अपने काव्यों में आदर्शवादी दृष्टिकोण से इस प्रकार की घटनाओं का समावेश करता है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि संस्कृत रूपकों में अतिमानवीयतत्वों अर्थात् शाप की अद्भुद झाँकी देखने को मिलती है, जिसके फलः स्वरूप नाटकों में अन्तर्द्वन्द्व एवं एक विचित्र गति आ जाती है, कथावस्तु में प्रवाह आ जाता है। इन तत्वों की परिकल्पना प्राचीन कवियों जैसे भास, कालिदास, भवभूति आदि के रूपकों में प्रचुरमात्रा में प्राप्त होती है। परवर्ती कवियों ने अपने नाटकों में इन चमत्कारी तत्वों का बहिष्कार कर नाटकीय गतिविधि को आघात पहुँचाया और इसी कारण उनकी रचनाओं को भास, कालिदास एवं भवभूमि के समान श्रेय प्राप्त न हो सका।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास – पं. बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, सिगरा, वाराणसी (1997)।
2. भासनाटक चक्रम् – सुधाकर मालवीय, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी (1987)
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, एम.आर. काले, मोतीलाल, बनारसी दास (1987)
4. मेघदूतम् – एम.आर. कलि, मोतीलाल बनारसी दास (1983)